रामचरितमानस

सुन्दरकाण्ड

चौपाई :

*** प्रगट बखानहिं राम सुभाऊ। अति सप्रेम गा बिसरि दुराऊ॥ रिपु के दूत कपिन्ह तब जाने। सकल बाँधि कपीस पहिं आने॥1॥

भावार्थ:-

फिर वे प्रकट रूप में भी अत्यंत प्रेम के साथ श्री रामजी के स्वभाव की बड़ाई करने लगे उन्हें दुराव (कपट वेश) भूल गया। सब वानरों ने जाना कि ये शत्रु के दूत हैं और वे उन सबको बाँधकर सुग्रीव के पास ले आए॥1॥

*** कह सुग्रीव सुनहु सब बानर। अंग भंग करि पठवहु निसिचर॥ सुनि सुग्रीव बचन कपि धाए। बाँधि कटक चहु पास फिराए॥2॥

भावार्थ:-

सुग्रीव ने कहा- सब वानरों! सुनो, राक्षसों के अंग-भंग करके भेज दो। सुग्रीव के वचन सुनकर वानर दौड़े। दूतों को बाँधकर उन्होंने सेना के चारों ओर घुमाया॥2॥

*** बहु प्रकार मारन कपि लागे। दीन पुकारत तदपि न त्यागे॥ जो हमार हर नासा काना। तेहि कोसलाधीस कै आना॥3॥

भावार्थ:-

वानर उन्हें बहुत तरह से मारने लगे। वे दीन होकर पुकारते थे, फिर भी वानरों ने उन्हें नहीं छोड़ा। (तब दूतों ने पुकारकर कहा-) जो हमारे नाक-कान काटेगा, उसे कोसलाधीश श्री रामजी की सौगंध है॥ 3॥

*** सुनि लछिमन सब निकट बोलाए। दया लागि हँसि तुरत छोड़ाए॥ रावन कर दीजहु यह पाती। लछिमन बचन बाचु कुलघाती॥4॥

भावार्थ:-

यह सुनकर लक्ष्मणजी ने सबको निकट बुलाया। उन्हें बड़ी दया लगी, इससे हँसकर उन्होंने राक्षसों को तुरंत ही छुड़ा दिया। (और उनसे कहा-) रावण के हाथ में यह चिट्ठी देना (और कहना-) हे कुलघातक! लक्ष्मण के शब्दों (संदेसे) को बाँचो॥4॥

दोहा :

*** कहेहु मुखागर मूढ़ सन मम संदेसु उदार। सीता देइ मिलहु न त आवा कालु तुम्हार॥52॥

भावार्थ:-

फिर उस मूर्ख से जबानी यह मेरा उदार (कृपा से भरा हुआ) संदेश कहना कि सीताजी को देकर उनसे (श्री रामजी से) मिलो, नहीं तो तुम्हारा काल आ गया (समझो)॥52॥

चौपाई :

*** तुरत नाइ लछिमन पद माथा। चले दूत बरनत गुन गाथा॥ कहत राम जसु लंकाँ आए। रावन चरन सीस तिन्ह नाए॥1॥

भावार्थ:-

लक्ष्मणजी के चरणों में मस्तक नवाकर, श्री रामजी के गुणों की कथा वर्णन करते हुए दूत तुरंत ही चल दिए। श्री रामजी का यश कहते हुए वे लंका में आए और उन्होंने रावण के चरणों में सिर नवाए॥1॥

*** बिहसि दसानन पूँछी बाता। कहसि न सुक आपनि कुसलाता॥ पुन कहु खबरि बिभीषन केरी। जाहि मृत्यु आई अति नेरी॥2॥

भावार्थ:-

दशमुख रावण ने हँसकर बात पूछी- अरे शुक! अपनी कुशल क्यों नहीं कहता? फिर उस विभीषण का समाचार सुना, मृत्यु जिसके अत्यंत निकट आ गई है॥2॥

*** करत राज लंका सठ त्यागी। होइहि जव कर कीट अभागी॥ पुनि कहु भालु कीस कटकाई। कठिन काल प्रेरित चलि आई॥3॥

भावार्थ:-

मूर्ख ने राज्य करते हुए लंका को त्याग दिया। अभागा अब जौ का कीड़ा (घुन) बनेगा (जौ के साथ जैसे घुन भी पिस जाता है, वैसे ही नर वानरों के साथ वह भी मारा जाएगा), फिर भालु और वानरों की सेना का हाल कह, जो कठिन काल की प्रेरणा से यहाँ चली आई है॥3॥

*** जिन्ह के जीवन कर रखवारा। भयउ मृदुल चित सिंधु बिचारा॥ कहु तपसिन्ह कै बात बहोरी। जिन्ह के हृदयँ त्रास अति मोरी॥4॥

भावार्थ:-

और जिनके जीवन का रक्षक कोमल चित्त वाला बेचारा समुद्र बन गया है (अर्थात्) उनके और राक्षसों के बीच में यदि समुद्र न होता तो अब तक राक्षस उन्हें मारकर खा गए होते। फिर उन तपस्वियों की बात बता, जिनके हृदय में मेरा बड़ा डर है॥4॥

दूत का रावण को समझाना और लक्ष्मणजी का पत्र देना

दोहा :

*** की भइ भेंट कि फिरि गए श्रवन सुजसु सुनि मोर। कहसि न रिपु दल तेज बल बहुत चकित चित तोर ॥53॥

भावार्थ:-

उनसे तेरी भेंट हुई या वे कानों से मेरा सुयश सुनकर ही लौट गए? शत्रु सेना का तेज और बल बताता क्यों नहीं? तेरा चित्त बहुत ही चकित (भौंचक्का सा) हो रहा है॥53॥

चौपाई :

*** नाथ कृपा करि पूँछेहु जैसें। मानहु कहा क्रोध तजि तैसें॥ मिला जाइ जब अनुज तुम्हारा। जातहिं राम तिलक तेहि सारा॥1॥

भावार्थ:-

(दूत ने कहा-) हे नाथ! आपने जैसे कृपा करके पूछा है, वैसे ही क्रोध छोड़कर मेरा कहना मानिए (मेरी बात पर विश्वास कीजिए)। जब आपका छोटा भाई श्री रामजी से जाकर मिला, तब उसके पहुँचते ही श्री रामजी ने उसको राजतिलक कर दिया॥1॥

दोहा :

*** रावन दूत हमहि सुनि काना। कपिन्ह बाँधि दीन्हें दुख नाना॥ श्रवन नासिका काटैं लागे। राम सपथ दीन्हें हम त्यागे॥2॥

भावार्थ:-

हम रावण के दूत हैं, यह कानों से सुनकर वानरों ने हमें बाँधकर बहुत कष्ट दिए यहाँ तक कि वे हमारे नाक-कान काटने लगे। श्री रामजी की शपथ दिलाने पर कहीं उन्होंने हमको छोड़ा॥2॥

*** पूँछिहु नाथ राम कटकाई। बदन कोटि सत बरनि न जाई॥ नाना बरन भालु कपि धारी। बिकटानन बिसाल भयकारी॥3॥

भावार्थ:-

हे नाथ! आपने श्री रामजी की सेना पूछी, सो वह तो सौ करोड़ मुखों से भी वर्णन नहीं की जा सकती। अनेकों रंगों के भालु और वानरों की सेना है, जो भयंकर मुख वाले, विशाल शरीर वाले और भयानक हैं॥3॥

*** जेहिं पुर दहेउ हतेउ सुत तोरा। सकल कपिन्ह महँ तेहि बलु थोरा॥ अमित नाम भट कठिन कराला। अमित नाग बल बिपुल बिसाला॥4॥

भावार्थ:-

जिसने नगर को जलाया और आपके पुत्र अक्षय कुमार को मारा, उसका बल तो सब वानरों में थोड़ा है। असंख्य नामों वाले बड़े ही कठोर और भयंकर योद्धा हैं। उनमें असंख्य हाथियों का बल है और वे बड़े ही विशाल हैं॥4॥

दोहा :

*** द्विबिद मयंद नील नल अंगद गद बिकटासि। दधिमुख केहरि निसठ सठ जामवंत बलरासि॥54॥

भावार्थ:-

द्विविद, मयंद, नील, नल, अंगद, गद, विकटास्य, दधिमुख, केसरी, निशठ, शठ और जाम्बवान् ये सभी बल की राशि हैं॥54॥

चौपाई :

*** ए कपि सब सुग्रीव समाना। इन्ह सम कोटिन्ह गनइ को नाना॥ राम कृपाँ अतुलित बल तिन्हहीं। तृन समान त्रैलोकहि गनहीं॥1॥

भावार्थ:-

ये सब वानर बल में सुग्रीव के समान हैं और इनके जैसे (एक-दो नहीं) करोड़ों हैं, उन बहुत सो को गिन ही कौन सकता है। श्री रामजी की कृपा से उनमें अतुलनीय बल है। वे तीनों लोकों को तृण के समान (तुच्छ) समझते हैं॥1॥

*** अस मैं सुना श्रवन दसकंधर। पदुम अठारह जूथप बंदर॥ नाथ कटक महँ सो कपि नाहीं। जो न तुम्हहि जीतै रन माहीं॥2॥

भावार्थ:-

हे दशग्रीव! मैंने कानों से ऐसा सुना है कि अठारह पद्म तो अकेले वानरों के सेनापति हैं। हे नाथ! उस सेना में ऐसा कोई वानर नहीं है, जो आपको रण में न जीत सके॥2॥

*** परम क्रोध मीजहिं सब हाथा। आयसु पै न देहिं रघुनाथा॥ सोषहिं सिंधु सहित झष ब्याला। पूरहिं न त भरि कुधर बिसाला॥3॥

भावार्थ:-

सब के सब अत्यंत क्रोध से हाथ मीजते हैं। पर श्री रघुनाथजी उन्हें आज्ञा नहीं देते। हम मछलियों और साँपों सहित समुद्र को सोख लेंगे। नहीं तो बड़े-बड़े पर्वतों से उसे भरकर पूर (पाट) देंगे॥3॥

*** मर्दि गर्द मिलवहिं दससीसा। ऐसेइ बचन कहहिं सब कीसा॥ गर्जहिं तर्जहिं सहज असंका। मानहुँ ग्रसन चहत हहिं लंका॥4॥

भावार्थ:-

और रावण को मसलकर धूल में मिला देंगे। सब वानर ऐसे ही वचन कह रहे हैं। सब सहज ही निडर हैं, इस प्रकार गरजते और डपटते हैं मानो लंका को निगल ही जाना चाहते हैं॥4॥

दोहा :

*** सहज सूर कपि भालु सब पुनि सिर पर प्रभु राम। रावन काल कोटि कहुँ जीति सकहिं संग्राम॥55॥

भावार्थ:-

सब वानर-भालू सहज ही शूरवीर हैं फिर उनके सिर पर प्रभु (सर्वेश्वर) श्री रामजी हैं। हे रावण! वे संग्राम में करोड़ों कालों को जीत सकते हैं॥55॥

चौपाई :

*** राम तेज बल बुधि बिपुलाई। सेष सहस सत सकहिं न गाई॥ सक सर एक सोषि सत सागर। तव भ्रातहि पूँछेउ नय नागर॥1॥

भावार्थ:-

श्री रामचंद्रजी के तेज (सामर्थ्य), बल और बुद्धि की अधिकता को लाखों शेष भी नहीं गा सकते। वे एक ही बाण से सैकड़ों समुद्रों को सोख सकते हैं, परंतु नीति निपुण श्री रामजी ने (नीति की रक्षा के लिए) आपके भाई से उपाय पूछा॥1॥

*** तासु बचन सुनि सागर पाहीं। मागत पंथ कृपा मन माहीं॥ सुनत बचन बिहसा दससीसा। जौं असि मति सहाय कृत कीसा॥2॥

भावार्थ:-

उनके (आपके भाई के) वचन सुनकर वे (श्री रामजी) समुद्र से राह माँग रहे हैं, उनके मन में कृपा भी है (इसलिए वे उसे सोखते नहीं)। दूत के ये वचन सुनते ही रावण खूब हँसा (और बोला-) जब ऐसी बुद्धि है, तभी तो वानरों को सहायक बनाया है!॥2॥

*** सहज भीरु कर बचन दृढ़ाई। सागर सन ठानी मचलाई॥ मूढ़ मृषा का करसि बड़ाई। रिपु बल बुद्धि थाह मैं पाई॥3॥

भावार्थ:-

स्वाभाविक ही डरपोक विभीषण के वचन को प्रमाण करके उन्होंने समुद्र से मचलना (बालहठ) ठाना है। अरे मूर्ख! झूठी बड़ाई क्या करता है? बस, मैंने शत्रु (राम) के बल और बुद्धि की थाह पा ली॥3॥

*** सचिव सभीत बिभीषन जाकें। बिजय बिभूति कहाँ जग ताकें॥ सुनि खल बचन दूत रिस बाढ़ी। समय बिचारि पत्रिका काढ़ी॥4॥

भावार्थ:-

सुनि खल बचन दूत रिस बाढ़ी। समय बिचारि पत्रिका काढ़ी॥4॥

*** रामानुज दीन्हीं यह पाती। नाथ बचाइ जुड़ावहु छाती॥ बिहसि बाम कर लीन्हीं रावन। सचिव बोलि सठ लाग बचावन॥5॥

भावार्थ:-

(और कहा-) श्री रामजी के छोटे भाई लक्ष्मण ने यह पत्रिका दी है। हे नाथ! इसे बचवाकर छाती ठंडी कीजिए। रावण ने हँसकर उसे बाएँ हाथ से लिया और मंत्री को बुलवाकर वह मूर्ख उसे बँचाने लगा॥5॥

दोहा :

*** बातन्ह मनहि रिझाइ सठ जनि घालसि कुल खीस। राम बिरोध न उबरसि सरन बिष्नु अज ईस॥56क॥

भावार्थ:-

(पत्रिका में लिखा था-) अरे मूर्ख! केवल बातों से ही मन को रिझाकर अपने कुल को नष्ट-भ्रष्ट न कर। श्री रामजी से विरोध करके तू विष्णु, ब्रह्मा और महेश की शरण जाने पर भी नहीं बचेगा॥56 (क)॥

*** की तजि मान अनुज इव प्रभु पद पंकज भृंग। होहि कि राम सरानल खल कुल सहित पतंग॥56ख॥

भावार्थ:-

या तो अभिमान छोड़कर अपने छोटे भाई विभीषण की भाँति प्रभु के चरण कमलों का भ्रमर बन जा। अथवा रे दुष्ट! श्री रामजी के बाण रूपी अग्नि में परिवार सहित पतिंगा हो जा (दोनों में से जो अच्छा लगे सो कर)॥56 (ख)॥

चौपाई :

*** सुनत सभय मन मुख मुसुकाई। कहत दसानन सबहि सुनाई॥ भूमि परा कर गहत अकासा। लघु तापस कर बाग बिलासा॥1॥

भावार्थ:-

पत्रिका सुनते ही रावण मन में भयभीत हो गया, परंतु मुख से (ऊपर से) मुस्कुराता हुआ वह सबको सुनाकर कहने लगा- जैसे कोई पृथ्वी पर पड़ा हुआ हाथ से आकाश को पकड़ने की चेष्टा करता हो, वैसे ही यह छोटा तपस्वी (लक्ष्मण) वाग्विलास करता है (डींग हाँकता है)॥1॥

*** कह सुक नाथ सत्य सब बानी। समुझहु छाड़ि प्रकृति अभिमानी॥ सुनहु बचन मम परिहरि क्रोधा। नाथ राम सन तजहु बिरोधा॥2॥

भावार्थ:-

शुक (दूत) ने कहा- हे नाथ! अभिमानी स्वभाव को छोड़कर (इस पत्र में लिखी) सब बातों को सत्य समझिए। क्रोध छोड़कर मेरा वचन सुनिए। हे नाथ! श्री रामजी से वैर त्याग दीजिए॥2॥

*** अति कोमल रघुबीर सुभाऊ। जद्यपि अखिल लोक कर राऊ॥ मिलत कृपा तुम्ह पर प्रभु करिही। उर अपराध न एकउ धरिही॥3॥

भावार्थ:-

यद्यपि श्री रघुवीर समस्त लोकों के स्वामी हैं, पर उनका स्वभाव अत्यंत ही कोमल है। मिलते ही प्रभु आप पर कृपा करेंगे और आपका एक भी अपराध वे हृदय में नहीं रखेंगे॥3॥

*** जनकसुता रघुनाथहि दीजे। एतना कहा मोर प्रभु कीजे॥ जब तेहिं कहा देन बैदेही। चरन प्रहार कीन्ह सठ तेही॥4॥

भावार्थ:-
जानकीजी श्री रघुनाथजी को दे दीजिए। हे प्रभु! इतना कहना मेरा कीजिए। जब उस (दूत) ने जानकीजी को देने के लिए कहा, तब दुष्ट रावण ने उसको लात मारी॥4॥
*** नाइ चरन सिरु चला सो तहाँ। कृपासिंधु रघुनायक जहाँ॥ करि प्रनामु निज कथा सुनाई। राम कृपाँ आपनि गति पाई॥5॥
भावार्थ:-
वह भी (विभीषण की भाँति) चरणों में सिर नवाकर वहीं चला, जहाँ कृपासागर श्री रघुनाथजी थे। प्रणाम करके उसने अपनी कथा सुनाई और श्री रामजी की कृपा से अपनी गति (मुनि का स्वरूप) पाई॥5॥
*** रिषि अगस्ति कीं साप भवानी। राछस भयउ रहा मुनि ग्यानी॥ बंदि राम पद बारहिं बारा। मुनि निज आश्रम कहुँ पगु धारा॥6॥
भावार्थ:-
(शिवजी कहते हैं-) हे भवानी! वह ज्ञानी मुनि था, अगस्त्य ऋषि के शाप से राक्षस हो गया था। बार-बार श्री रामजी के चरणों की वंदना करके वह मुनि अपने आश्रम को चला गया॥6॥

समुद्र पर श्री रामजी का क्रोध और समुद्र की विनती, श्री राम गुणगान की महिमा

दोहा :
*** बिनय न मानत जलधि जड़ गए तीनि दिन बीति। बोले राम सकोप तब भय बिनु होइ न प्रीति॥57॥
भावार्थ:-
इधर तीन दिन बीत गए, किंतु जड़ समुद्र विनय नहीं मानता। तब श्री रामजी क्रोध सहित बोले- बिना भय के प्रीति नहीं होती!॥57॥
चौपाई :
*** लछिमन बान सरासन आनू। सोषौं बारिधि बिसिख कृसानु॥ सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीति। सहज कृपन सन सुंदर नीति॥1॥
भावार्थ:-
हे लक्ष्मण! धनुष-बाण लाओ, मैं अग्निबाण से समुद्र को सोख डालूँ। मूर्ख से विनय, कुटिल के साथ प्रीति, स्वाभाविक ही कंजूस से सुंदर नीति (उदारता का उपदेश),॥1॥
*** ममता रत सन ग्यान कहानी। अति लोभी सन बिरति बखानी॥ क्रोधिहि सम कामिहि हरिकथा। ऊसर बीज बएँ फल जथा॥2॥

भावार्थ:-

ममता में फँसे हुए मनुष्य से ज्ञान की कथा, अत्यंत लोभी से वैराग्य का वर्णन, क्रोधी से शम (शांति) की बात और कामी से भगवान् की कथा, इनका वैसा ही फल होता है जैसा ऊसर में बीज बोने से होता है (अर्थात् ऊसर में बीज बोने की भाँति यह सब व्यर्थ जाता है)॥2॥

*** अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा। यह मत लछिमन के मन भावा॥ संधानेउ प्रभु बिसिख कराला। उठी उदधि उर अंतर ज्वाला॥3॥

भावार्थ:-

ऐसा कहकर श्री रघुनाथजी ने धनुष चढ़ाया। यह मत लक्ष्मणजी के मन को बहुत अच्छा लगा। प्रभु ने भयानक (अग्नि) बाण संधान किया, जिससे समुद्र के हृदय के अंदर अग्नि की ज्वाला उठी॥3॥

*** मकर उरग झष गन अकुलाने। जरत जंतु जलनिधि जब जाने॥ कनक थार भरि मनि गन नाना। बिप्र रूप आयउ तजि माना॥4॥

भावार्थ:-

मगर, साँप तथा मछलियों के समूह व्याकुल हो गए। जब समुद्र ने जीवों को जलते जाना, तब सोने के थाल में अनेक मणियों (रत्नों) को भरकर अभिमान छोड़कर वह ब्राह्मण के रूप में आया॥4॥

दोहा :

*** काटेहिं पइ कदरी फरइ कोटि जतन कोउ सींच। बिनय न मान खगेस सुनु डाटेहिं पइ नव नीच॥58॥

भावार्थ:-

(काकभुशुण्डिजी कहते हैं-) हे गरुड़जी! सुनिए, चाहे कोई करोड़ों उपाय करके सींचे, पर केला तो काटने पर ही फलता है। नीच विनय से नहीं मानता, वह डाँटने पर ही झुकता है (रास्ते पर आता है)॥58॥

*** सभय सिंधु गहि पद प्रभु केरे। छमहु नाथ सब अवगुन मेरे॥। गगन समीर अनल जल धरनी। इन्ह कइ नाथ सहज जड़ करनी॥1॥

भावार्थ:-

समुद्र ने भयभीत होकर प्रभु के चरण पकड़कर कहा- हे नाथ! मेरे सब अवगुण (दोष) क्षमा कीजिए। हे नाथ! आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी- इन सबकी करनी स्वभाव से ही जड़ है॥1॥

*** तव प्रेरित मायाँ उपजाए। सृष्टि हेतु सब ग्रंथनि गाए॥ प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई। सो तेहि भाँति रहें सुख लहई॥2॥

भावार्थ:-

आपकी प्रेरणा से माया ने इन्हें सृष्टि के लिए उत्पन्न किया है, सब ग्रंथों ने यही गाया है। जिसके लिए स्वामी की जैसी आज्ञा है, वह उसी प्रकार से रहने में सुख पाता है॥2॥

*** प्रभु भल कीन्ह मोहि सिख दीन्हीं। मरजादा पुनि तुम्हरी कीन्हीं॥ ढोल गवाँर सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी॥3॥

भावार्थ:-

प्रभु ने अच्छा किया जो मुझे शिक्षा (दंड) दी, किंतु मर्यादा (जीवों का स्वभाव) भी आपकी ही बनाई हुई है। ढोल, गँवार, शूद्र, पशु और स्त्री- ये सब शिक्षा के अधिकारी हैं॥3॥

*** प्रभु प्रताप मैं जाब सुखाई। उतरिहि कटकु न मोरि बड़ाई॥ प्रभु अग्या अपेल श्रुति गाई। करौं सो बेगि जो तुम्हहि सोहाई॥4॥

भावार्थ:-

प्रभु के प्रताप से मैं सूख जाऊँगा और सेना पार उतर जाएगी, इसमें मेरी बड़ाई नहीं है (मेरी मर्यादा नहीं रहेगी)। तथापि प्रभु की आज्ञा अपेल है (अर्थात् आपकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं हो सकता) ऐसा वेद गाते हैं। अब आपको जो अच्छा लगे, मैं तुरंत वही करूँ॥4॥

दोहा :

***सुनत बिनीत बचन अति कह कृपाल मुसुकाइ। जेहि बिधि उतरै कपि कटकु तात सो कहहु उपाइ॥59॥

भावार्थ:-

समुद्र के अत्यंत विनीत वचन सुनकर कृपालु श्री रामजी ने मुस्कुराकर कहा- हे तात! जिस प्रकार वानरों की सेना पार उतर जाए, वह उपाय बताओ॥59॥

चौपाई :

*** नाथ नील नल कपि द्वौ भाई। लरिकाईं रिषि आसिष पाई॥ तिन्ह कें परस किएँ गिरि भारे। तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे॥1॥

भावार्थ:-

(समुद्र ने कहा)) हे नाथ! नील और नल दो वानर भाई हैं। उन्होंने लड़कपन में ऋषि से आशीर्वाद पाया था। उनके स्पर्श कर लेने से ही भारी-भारी पहाड़ भी आपके प्रताप से समुद्र पर तैर जाएँगे॥1॥

*** मैं पुनि उर धरि प्रभु प्रभुताई। करिहउँ बल अनुमान सहाई॥ एहि बिधि नाथ पयोधि बँधाइअ। जेहिं यह सुजसु लोक तिहुँ गाइअ॥2॥

भावार्थ:-

मैं भी प्रभु की प्रभुता को हृदय में धारण कर अपने बल के अनुसार (जहाँ तक मुझसे बन पड़ेगा) सहायता करूँगा। हे नाथ! इस प्रकार समुद्र को बँधाइए, जिससे तीनों लोकों में आपका सुंदर यश गाया जाए॥2॥

*** एहि सर मम उत्तर तट बासी। हतहु नाथ खल नर अघ रासी॥ सुनि कृपाल सागर मन पीरा। तुरतहिं हरी राम रनधीरा॥3॥

भावार्थ:-

इस बाण से मेरे उत्तर तट पर रहने वाले पाप के राशि दुष्ट मनुष्यों का वध कीजिए। कृपालु और रणधीर श्री रामजी ने समुद्र के मन की पीड़ा सुनकर उसे तुरंत ही हर लिया (अर्थात् बाण से उन दुष्टों का वध कर दिया)॥3॥

*** देखि राम बल पौरुष भारी। हरषि पयोनिधि भयउ सुखारी॥ सकल चरित कहि प्रभुहि सुनावा। चरन बंदि पाथोधि सिधावा॥4॥

भावार्थ:-

श्री रामजी का भारी बल और पौरुष देखकर समुद्र हर्षित होकर सुखी हो गया। उसने उन दुष्टों का सारा चरित्र प्रभु को कह सुनाया। फिर चरणों की वंदना करके समुद्र चला गया॥4॥

छंद :

*** निज भवन गवनेउ सिंधु श्रीरघुपतिहि यह मत भायऊ। यह चरित कलि मल हर जथामति दास तुलसी गायऊ॥ सुख भवन संसय समन दवन बिषाद रघुपति गुन गना। तजि सकल आस भरोस गावहि सुनहि संतत सठ मना॥

भावार्थ:-

समुद्र अपने घर चला गया, श्री रघुनाथजी को यह मत (उसकी सलाह) अच्छा लगा। यह चरित्र कलियुग के पापों को हरने वाला है, इसे तुलसीदास ने अपनी बुद्धि के अनुसार गाया है। श्री रघुनाथजी के गुण समूह सुख के धाम, संदेह का नाश करने वाले और विषाद का दमन करने वाले हैं। अरे मूर्ख मन! तू संसार का सब आशा-भरोसा त्यागकर निरंतर इन्हें गा और सुन।

दोहा :

*** सकल सुमंगल दायक रघुनायक गुन गान। सादर सुनहिं ते तरहिं भव सिंधु बिना जलजान॥60॥

भावार्थ:-

श्री रघुनाथजी का गुणगान संपूर्ण सुंदर मंगलों का देने वाला है। जो इसे आदर सहित सुनेंगे, वे बिना किसी जहाज (अन्य साधन) के ही भवसागर को तर जाएँगे॥60॥ मासपारायण, चौबीसवाँ विश्राम इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने पंचमः सोपानः समाप्तः। कलियुग के समस्त पापों का नाश करने वाले श्री रामचरित मानस का यह पाँचवाँ सोपान समाप्त हुआ। (सुंदरकाण्ड समाप्त)